विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३५ अश्विन पूर्णिमा २५ अक्टूबर १९९१ वर्ष २१ अंक ४

धम्मवाणी

पूजको लभते पूजं वन्दको पटिवन्दनं ।
यसो कित्तिञ्च पप्पोति यो मित्तानं न दूभति ॥

सामणेर- विनय, मेत्तानिसंस .. ६.

पूजा करनेवाले की पूजा होती है, वन्दना करनेवाले की वन्दना होती है, यश और कीर्ति को प्राप्त होता है, जो कि मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता।

आत्म कथन

विपश्यना जीवन में उतरे

धर्म जीवन में उतरे तो ही धर्म है। विपश्यना दैनिक जीवन व्यवहार में उतरनी चाहिए। अन्यथा यंत्रवत हो जाएगी, कर्मकाण्ड बन जाएगी और फलदायी नहीं होगी। जीवन के उतार-चढ़ाव में, बसंत-पतझड़ में विपश्यना साधना के कारण समता बनी रहे; इस पर गुरुदेव खूब जोर देते थे। इसी कारण मेरे मन पर उनके इस उपदेश का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था।

जब यकायक मेरे सारे व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण हो गया और उद्योग भी सरकार के हवाले हो गए, तो चित्त की समता और शांति बनाए रखने में विपश्यना का ही बल मिला। गुरुदेव इसे देखकर बहुत प्रसन्न होते थे।

एक दिन उन्होंने मुझे पूछ लिया, " दैनिक विपश्यना साधना करने के बाद क्या तुम अपने पुण्य का वितरण करते हो और कुछ देर मैत्री-भावना करते हो ?"

मैंने हां में उत्तर दिया तो उन्होंने पूछा, " विशेष रूप से किसे अपने पुण्य में भागीदार बनाते हो ?"

मैंने कहा, " अपने बड़ों को और फिर उन सब को जिन्होंने मुझे धरम में पकने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता दी है। इनमें सरकार के वे मंत्री और अफसर भी हैं, जिन्होंने मेरे व्यवसाय आदि का राष्ट्रीयकरण किया और मुझे धर्म में पकने का सुअवसर दिया। इसके बाद अन्य सभी प्राणियों को।"

गुरुदेव यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। मैंने उन्हें बताया कि राष्ट्रीयकरण हो जाने के कारण मेरे मन में सरकार के प्रति अथवा संबंधित अधिकारियों के प्रति रंच मात्र भी द्वेष नहीं है। इस मंत्रिमंडल में मेरे मित्र भी हैं। उनके द्वारा यह जानकर मैं पूरी तरह आश्वस्त हूं कि सरकार का यह कदम किन्हीं विशेष व्यापारियों के प्रति द्वेष के कारण नहीं उठा, बल्कि सच्चाई यह है कि इससे सारे राष्ट्र की भलाई होगी, ऐसा मान कर उन्होंने यह कदम उठाया है। जब उनके मन में दुर्भावना नहीं है तो मेरे मन में दुर्भावना क्यों जागे ?. बल्कि सच्चाई तो यह है कि मेरे मन में तो सद्भावना ही जागती है। मैं सरकार का अत्यंत कृतज्ञ हूं कि उसने मुझे व्यवसाय-उद्योग चलाने की उन सारी जिम्मेदारियों से मुक्त कर दिया, जिनमें कि मैं इतना उलझा रहा करता था। अब तो समय ही समय है, फुरसत ही फुरसत है। अब मैं अपना सारा समय परियत्ति और पटिपत्ति धर्म में लगा रहा हूं जो कि अन्यथा बिल्कुल असम्भव होता।

गुरुदेव ने यह सुनकर साधु! साधु! साधु! कहा और मुझे उत्साहित किया कि मैं इसी प्रकार इन्हें मैत्री देता रहूं। और मैं इसी प्रकार मैत्री देता रहा, दिये जा रहा हूं और देता रहूंगा। मैं इस कारण सचमुच बड़ा प्रसन्न हूं। ●

आत्म कथन

जब आधार ही गलत हो

परम पूज्य गुरुदेव को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के २५०० वर्ष बाद विपश्यना अपनी जन्मभूमि भारत में फिर जागेगी और सारे विश्व में फैलकर विपुल लोक-कल्याण करेगी। वे बहुधा कहा करते थे कि " **अब विपश्यना का डंका बज गया है। समय आ गया है। यह बर्मा से बाहर जाएगी और खूब फैलेगी।** " उनकी यह प्रबल धर्म-कामना थी कि स्वयं इस धर्मदूत का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन करें। स्वयं भारत जाकर विपश्यना के शिविर लगाएं। उस देश में विपश्यना विद्या को पुनः स्थापित करें, जिससे दुखियारे लोगों को दुःख-विमुक्ति का कल्याणकारी मार्ग मिले।

वह बार बार कहा करते थे, **" बर्मा पर भारत का बहुत बड़ा ऋण है, जिसकी अदायगी का अब समय आ गया है। वहीं से हमें यह अनमोल धर्मरत्न मिला। भारत इसे खो चुका है। आज उसे इसकी बहुत आवश्यकता है। भारत में इस समय ऐसे बहुत लोग जन्मे हैं, जिनके पास अनेक जन्मों की पुण्य पारमिताएं हैं। ऐसे लोग विपश्यना के धर्मरत्न को शीघ्र ही सहर्ष स्वीकार करेंगे।"**

लेकिन उत्कट अभिलाषा होते हुए भी लाचारी थी। वे इस सत्कार्य के लिए भारत नहीं जा सकते थे, क्योंकि उन दिनों किसी बर्मी नागरिक को विदेश-यात्रा के लिए पासपोर्ट मिलना निहायत कठिन था।

ऐसे समय मद्रास के महाबोधि सोसायटी के प्रमुख भिक्षु नंदीश्वरजी का निमंत्रण पत्र आया। उन्होंने पूज्य गुरुजी और उनके चंद साथियों को विपश्यना के शिविर लगाने हेतु भारत आने के लिए आमंत्रित किया। गुरुदेव बड़े प्रसन्न हुए। लगा उनकी चिरसंचित अभिलाषा पूर्ण होने का समय आ गया है। धर्म-सेवा के लिए विदेश जाने की आकांक्षा प्रगट करते हुए उन्होंने पासपोर्ट के लिए सरकार के पास आवेदन पत्र चढ़ाया।

संबंधित मंत्री बहुत बड़े धर्म-संकट में पड़ गया। गुरुजी के प्रति उसके मन में बहुत आदरभाव था। परंतु उसकी लाचारी थी। सरकारी निर्णय के अनुसार पासपोर्ट केवल उन्हीं बर्मी नागरिकों को दिया जा सकता था, जो कि सदा के लिए बर्मा छोड़ कर जाते हों अथवा जीविकोपार्जन के लिए विदेश में नौकरी करने जाते हों। ऐसी अवस्था में गुरुदेव को पासपोर्ट कैसे देता? अतः उसने सरकार के एक बड़े अफसर को गुरुजी के पास भेजा। यह व्यक्ति गुरुजी का शिष्य भी था। उसके जरिए संदेश भेजा कि सरकारी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए गुरुजी अपने किसी विदेशी शिष्य से नौकरी दिये जाने का एक पत्र मँगा लें। इस आधार पर उन्हें तुरंत पासपोर्ट दे दिया जाएगा। यह केवल औपचारिकता पूरी करने के लिए था। वैसे तो सरकार भी जानती है कि वे जीविकोपार्जन के लिए विदेश में नौकरी करने नहीं जा रहे।

सयाजी इस सुझाव को स्वीकार कर लेते तो उनका धर्मचारिका पर जाने का स्वप्न सहज ही पूरा हो जाता। वे भारत को बर्मा का ऋण स्वयं चुकाते और विश्वभर के दुखियारों को स्वयं धर्म का अमृतरस बांट सकते। परंतु प्रश्न शील का था। शील के मामले में वह समझौता नहीं कर सकते थे। वह बार-बार कहा करते थे कि अच्छे से अच्छा उद्देश्य भी बुरे माध्यमों से पूरा करने का गलत प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए। उससे सफलता नहीं मिलती। साध्य जितना उज्ज्वल है, साधन भी उतना ही उज्ज्वल होनी चाहिए। यही शुद्ध धर्म है।

अतः बड़ी कठोरता के साथ उन्होंने इस सुझाव को ठुकरा दिया। नौकरी का झूठा पत्र मँगवा लेना आसान था। परंतु झूठ के आधार पर धर्म कैसे सिखाया जाएगा? अपने चिर अभीप्सित स्वप्नों का विदीर्ण होना उन्हें स्वीकार्य था, पर थोड़ी सी भी झूठ का सहारा लेना नहीं। झूठ झूठ ही है, चाहे जितने अच्छे उद्देश्य के लिए क्यों न हो। ऊ बा खिन झूठ को आधार नहीं बना सकते थे। ●

आत्म कथन

वे सदा साथ रहते हैं

कई वर्षों से गुरुदेव मुझे विपश्यना शिक्षण की ट्रेनिंग दे रहे थे। यद्यपि मुझे इसका रंचमात्र भी भान नहीं था। मैं तो वर्षों तक यही समझता रहा कि मैं महज एक भाषा अनुवादक की तरह उनकी सेवा कर रहा हूं, जिससे कि उनके द्वारा बरमी में दिए गए आदेश भारतीय शिष्य हिंदी में समझ सकें। बहुत वर्षों बाद पता चला कि वे मुझे भावी जिम्मेदारियों के लिए तैय्यार कर रहे हैं।

वह मुझे अपने साथ उत्तरी बर्मा के मांडले और मेम्यो शहरों में शिविर लगाने के लिए ले गए। वहां कोई तपे हुए विपश्यना केन्द्र तो थे नहीं, जहां धर्म की पावन तरंगे मिल सकें। मुझे भारत जाकर स्कूल, धर्मशाला, होटल आदि-आदि कामचलाऊ स्थानों पर ही शिविर लगाने पड़ेंगे, जहां विपश्यना केन्द्रों की धर्म-तरंगे जरा भी नहीं मिलेंगी। मानो इसी की पूर्व ट्रेनिंग देने के लिए साथ ले गए थे। साधना केन्द्र के बाहर विपश्यना शिविर कैसे लगाया जाय, शायद इसका पूर्वाभास कराना चाहते थे।

उत्तरी बर्मा का पहला शिविर मांडले में लगा। इसमें सभी साधक-साधिकाएं हिंदी भाषी भारतीय थे। यकायक गुरुजी ने मुझे आदेश दिया कि सायंकालीन धर्मप्रवचन मैं दूं और हिंदी में दूं। अब लगता है कि वह भी भावी जिम्मेदारियों की तैय्यारियां करवाने के लिए था। वैसे सार्वजनिक प्रवचन देने का यथेष्ट अनुभव था। परन्तु विपश्यना धर्म पर प्रवचन देना और वह भी पूज्य गुरुदेव की उपस्थिति में, यह बड़ा अटपटा लगा और झिझक भी हुई। परंतु गुरुदेव का आदेश था। अतः पूरा किया और झिझक मिटी।

उत्तरी बर्मा की इस धर्मचारिका के कुछ दिनों बाद ही रंगून के विपश्यना केन्द्र में एक शिविर लगा, जिसमें केवल ३ साधक शामिल हुए और तीनों ही हिंदी भाषी भारतीय। जब आनापान देने का समय आया तो सदा की भांति मैं गुरुदेव के साथ चैत्य के केन्द्रीय कक्ष में गया। वहां गुरुदेव ने प्रारंभिक बुद्ध वंदना पूरी की और फिर यकायक मुझे कहा कि अब इन्हें त्रि-रत्न शरण, पंचशील और आनापान तुम दो! इस सर्वथा अप्रत्याशित आदेश से मैं चौंका। उन्होंने मुझे जरा घबराया हुआ देखा तो आश्वासन भरे शब्दों में हिम्मत बँधायी कि तुम मत घबराओ। मैं तो यहीं तुम्हारे पास हूं।

मैंने अपनी झिझक दूर की और उनकी उपस्थिति में पहली बार प्रारंभिक धर्म-शिक्षण का गंभीर उत्तरदायित्व निभाया। गुरुदेव बहुत संतुष्ट प्रसन्न हुए।

चौथे दिन विपश्यना थी। यह तो अनुमान था कि विपश्यना भी शायद गुरुजी मुझसे ही दिलवाएंगे। पर घबराहट तब हुई जब गुरुजी विपश्यना देने का आदेश देकर स्वयं अपने निवास कक्ष में विश्राम करने चले गए। उनकी अनुपस्थिति में मैं अकेला विपश्यना कैसे दूंगा? परंतु शायद वे यही सिखाना चाहते थे। उन्होंने जाते-जाते हिम्मत बँधायी कि वे उपस्थित नहीं रहेंगे तो क्या हुआ? उनकी मैत्री और धर्म की तरंगें तो रहेंगी ही; जो मुझे सुरक्षा और सफलता देंगी। उनके आश्वासनभरे शब्दों से बल प्राप्त करके मैंने पहली बार तीन शिविरार्थियों को स्वयं अकेले विपश्यना दी।

सिर से पांव तक विपश्यना की यात्रा अभी आधी भी नहीं हो पाई थी कि उन तीनो में से एक साधक बड़ी तीव्र गति से धूजने लगा। क्षण प्रतिक्षण उसका कांपना और धूजना तेज हुआ जा रहा था। मानो उस पर कोई प्रेत-प्राणी सवार हो गया हो। कुछ क्षणों के लिए मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। अब क्या करूं? जी में आया कि आवाज देकर गुरुजी को बुलाऊं। पर ऐसा करने से विपश्यना का सारा वातावरण ही नष्ट हो जाता। मैं किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो उठा। तत्काल मेरे मन में गुरुदेव का मुस्कराता हुआ चेहरा जागा। फिर कानों में उनके आश्वासन भरे शब्द गूंजे और चारों ओर उनकी मैत्री की धर्म-तरंगें महसूस होने लगीं। बड़ा बल मिला। मैं समझ गया कि उन्हें आवाज देकर बुलाने की आवश्यकता नहीं है। वे तो इन धर्म-तरंगों के रूप में मेरे साथ हैं ही। बस इसी से मन शांत हुआ और संतुलित प्रशांत चित्त से उस साधक को मैत्री दी तो कुछ मिनिटों में ही वह शांत हो गया। उसका धूजना बंद हो गया। मेरे द्वारा दी गई पहली विपश्यना सफल हुई। गुरुदेव अत्यंत प्रसन्न हुए।

तब से आज तक जब किसी शिविर में धर्म सिखाता हूं तो मुझे मैत्रीपूर्ण तरंगों के रूप में उनकी उपस्थिति महसूस होती है और मैं यह अहसास करता हूं कि मैं तो उनका प्रतिनिधि मात्र हूं। जगह जगह- दुखियारों को धर्म बांट कर उनके शुभ संकल्पों को पूरा करते हुए महज उनकी सेवा कर रहा हूं। काम तो उन्हीं का है। बल तो उन्हीं का है! ●

धर्मपुत्र,
स. ना. गो.

गुरुदेव के पत्रों में से :–

" तुम भारत में बहुत महान और अपूर्व सेवा का काम कर रहे हो। यह कार्य करते हुए तुम मेरा ही प्रतिनिधित्व कर रहे हो। अतः यह मेरा दायित्व है कि जिन्हें आवश्यकता है उन्हें शुद्ध सत्य धर्म दे सकने के तुम्हारे प्रयत्नों में तुम्हें हर कीमत पर सफलता मिले। तुम्हारी सफलता मेरी ही सफलता है।. . ." (१०-१०-६९)

* * *

" साधना के हर सत्र के बाद साधकों पर तथा अन्य सभी प्राणियों पर अपनी मैत्री बरसाओ!. . ." (१०-१२-६९)

* * *

" जिस प्रकार सभी विरोधी शक्तियों पर विजय पाने के लिए भगवान बुद्ध को संघर्ष करना पड़ा, इसी प्रकार तुम्हें भी करना है।"

* * *

" सभी प्राणियों के प्रति और विशेषकर शिविरार्थियों के प्रति मंगल मैत्री देते हुए तुम अपने काम में लगे रहो। यह विश्वास रखो कि सफलता मिलेगी ही।... "

* * *

" सारे संसार में जो परिवर्तन हो रहे हैं, इनसे स्पष्ट है कि ऐसा दिन आएगा जब कि सभी पारमी संपन्न लोग धर्मचक्र की छत्रछाया में आ जाएंगे।. . ." (२७-१-७०)

* * *

" सम्राट अशोक के साम्राज्य के पश्चात् मज्झिम देश (भारत) में बुद्ध धर्म का ह्रास होने लगा। लगभग २००० वर्ष के अंतराल के पश्चात् तुम पहले व्यक्ति हो, जिसने वहां विपश्यना साधना को पुनर्जागृत किया। इसके व्यावहारिक सुपरिणाम आए हैं। यह देखकर हमारे मन में ऐसा भाव जागना स्वाभाविक है कि हम भगवान का ऋण चुकाने का एक बहुत बड़ा काम कर रहे हैं।. . ." (२८-८-७०)

* * *

" जो लोग लंबे अरसे तक लगातार ध्यान करना चाहें उनके लिए एक उपयुक्त स्थान आवश्यक है। भले वह छोटा ही हो, पर वही तुम्हारे धर्म प्रशिक्षण का केन्द्र बने।. . ." (१९-९-७०)

* * *

छोटे भाई गौरीशंकर के नाम गुरुजी का पत्र–

" यह देखकर मन में बड़ा उत्साह जागता है कि तुम्हारा भाई सत्य नारायण गोइन्का भारत में सद्धर्म की शिक्षा देने का कितना अच्छा काम कर रहा है। मेरा जी चाहता है कि मैं भी अपना शेष जीवन वहीं उसके साथ बिताऊं, जहां कि सद्धर्म के लिए बहुत उपजाऊ धरती है।. . ." (१९-६-७०)

नोट : अंतिम सांस छोड़ने के दो दिन पूर्व गुरुजी ने अपने कुछ अंतरंग साथियों को कहा कि " अब मैंने फैसला कर लिया है कि सदा के लिए बर्मा छोड़ दूंगा और गोइन्का के साथ जाकर रहूंगा।"

और उन्होंने यही किया। अब भी गोइन्का के साथ ही रहते हैं। सारे शिविर उनकी मंगल मैत्री की छत्रछाया में ही सफल सम्पन्न होते हैं और होते रहेंगे। **(स. ना. गो.)**

भूल सुधार

गतांक धम्मवाणी का अनुवाद भूल से मेत्तानिसंसं के पांचवे की जगह छठा छप गया। उसे कृपया निम्न प्रकार से सुधारकर पढ़ें :–

सक्कत्वा सक्कतो होति गरु होति सगारवो ।
वण्णकित्तिभतो होति यो मित्तानं न दूभति ॥

" वह सत्कार करके सत्कार पाता है, गौरव करके गौरवनीय होता है, उसकी यश-कीर्ति चारों ओर फैलती है; जो मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता। "

नव नियुक्तियां

पूज्य गुरुजी ने निम्न प्रकार से नियुक्ति की है।

वरिष्ठ सहायक आचार्य

Barry and Kate Lapping, United States

सहायक आचार्य

Gerry and Margaret Bridgland, Australia
Laraine Doneman, Australia
Floh Lehmann, Germany
Parker and Laura Mills, United States
Brindley and Damayanthi Ratwatte, Sri Lanka

Bhikkhus teaching with Goenkaji's tapes

Ven. Ratanapala Bhikkhu, Madras, India

दोहे धरम के

नमन करूं गुरुदेव को, कैसे संत सुजान ।
कितने करुणा चित्त से, दिया धरम का दान ॥

जय जय जय गुरुदेव जी, नमनूं शीश नवाय ।
धरम रतन ऐसा दिया, पाप समीप न आय ॥

गुरुवर! तेरे चरण की, धूल लगे मम शीश ।
सदा धरम में रत रहूं, मिले यही आशीष ॥

ग्रहण करूं गुरुदेवजी, ऐसी शुभ आशीष ।
धर्म बोधि हिय में धरूं, चरण नवाऊं शीश ॥

यदि गुरुवर मिलते नहीं, बरमा देश सुदेश ।
तो धन के जंजाल में, जीवन खोता शेष ॥

अहो भाग्य! सद्गुरु मिले, कैसे संत सुजान !
मार्ग दिखाया मुक्ति का, शुद्ध जगाया ज्ञान ॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर,
दिल्ली-११०००७
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

जय जय जंय गुरुदेवजू , जय जय किरपा निधान ।
किंकर पर किरपा करी, हुयो परम कल्याण ॥

इसो चखायो धरम रस, विसयन रस न लुभाय ।
धरम सार दीन्यो इसो, छिलका दिया छुड़ाय ॥

धरम दियो कैसो सबळ, पग पग करै सहाय ।
भय भैरव सब छूटग्या, निरभय दियो बणाय ॥

धन्य! दियो गुरुदेवजू , विपस्सना रो दान ।
हिवड़ो तो हरखित हुयो, पुलकित हुइग्या प्राण ॥

धन्यभाग गुरुदेवजू , पकड़ी मेरी बांह ।
मुक्ति विधायक पथ दियो, धरम स्तूप री छांह ॥

सद्गुरु तो किरपा करी, दियो धरम को नीर ।
धोयां सरसी आप ही, अपणो मैलो चीर ॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१/४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड, १ला माला,
कालबादेवी रोड, बम्बई-४००००२
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : **राम प्रताप यादव**, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३. दूरभाष : ८६, १७६ एवं ७६.
अश्विन पूर्णिमा मुद्रण स्थान : फ्रेंड्स प्रिंटरी, १९१, डिमटिमकर रोड, नागपाड़ा, मुंबई-४००००८. **२५ अक्टूबर १९९१**
'विपश्यना पत्रिका' का वार्षिक अथवा आजीवन शुल्क कृपया **विपश्यना विशोधन विन्यास**, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, के नाम-पते पर ही भेजें।

वार्षिक शुल्क रू. १०/-
आजीवन शुल्क रू. १००/-

'विपश्यना' Reg. No. 19156/71
Postal Reg. No. NS(M) 16/91

Bulk mail postage paid
Permit No. NS 18

If undelivered please return to :--
विपश्यना विशोधन विन्यास,
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३,
जिला - नाशिक, महाराष्ट्र, INDIA.
Tel. (0253) 72592.